छोटे किसान का सवाल – एक सही दृष्टिकोण

हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में यह गलत धारणा विद्यमान है कि यहां की कृषि में अधिकांशतः स्वयं के उपभोग के लिए उत्पादन होता है, कि यहां पर छोटे पैमाने की कृषि की जाती है, और कि यहां की कृषि में साधारण माल उत्पादन प्रचलन में है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि चूंकि मुनाफे के लिए उत्पादन न होकर निजी उपभोग के लिए उत्पादन हो रहा है, और चूंकि साधारण माल उत्पादन हो रहा है,इसलिए यहां पर पूंजीवादी उत्पादन पद्धति नहीं है। इस के अनुसार, चाहे छोटा किसान हो जो थोड़ा बहुत उजरती श्रम का इस्तेमाल करता हो या चाहे हथकरघा मालिक हो या घरेलू उद्योग या अन्य कोई भी छोटा उत्पादक हो, वे सभी मालों का उत्पादन कर सकते हैं लेकिन वे अतिरिक्त मूल्य नहीं पैदा करते और न ही वे स्थिर पूंजी को विकसित करते या बढ़ाते हैं। साधारण माल उत्पादन का यह रुप पीढ़ियों तक जारी रह सकता है। लेकिन यह उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों में कोई खास प्रभाव नहीं डालता। इससे इनके निष्कर्ष यहां तक पहुंचते हैं कि भारतीय कृषि में अर्द्ध-सामंती सम्बन्ध बरकरार है और कि भारतीय समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास में सबसे बड़ी और केन्द्रीय बाधा बने हुए है।

हमने 'लाल सलाम' के तीसरे और चौथे अंकों में यह दिखलाने की कोशिश की थी कि यह कहना गलत है कि भारतीय कृषि में मुनाफे के लिए उत्पादन नहीं हो रहा है। हमने यह दर्शाया था कि यहां पर विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन हो रहा है। हमने तथ्यों, आंकड़ों और तर्को के जरिये यह सिद्ध करने की कोशिश की थी कि भारतीय कृषि भी समूची भारतीय अर्थव्यवस्था की तरह पूंजीवादी कृषि में रुपान्तरित हो चुकी है।

हालांकि हम इस दलील को पूर्णतया खारिज करते हैं कि हमारे यहां निजी उपभोग के लिए अधिकांश उत्पादन हो रहा है और कि भारतीय कृषि में साधारण माल उत्पादन प्रचलन में है। फिर भी, कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन में व्याप्त इस मौजूदा गलत धारणा का कि साधारण माल उत्पादन की मौजूदगी,मौजूदा सामाजिक-आर्थिक संरचना के चरित्र का निर्धारण करती है, खण्डन करने के लिए, हम बहस के लिए यह मान लेते हैं कि साधारण माल उत्पादन, यहां प्रचलन में है।

साधारण माल उत्पादन अवश्यम्भावी तौर पर छोटे पैमाने के उत्पादन से जुड़ा होता है। इसके अर्न्तगत उत्पादक अपने परिवारिक श्रम की बदौलत उत्पादन करता है और अपने जरुरतों को पूरा करने के लिए वह अपने उत्पाद का या तो सीधे नहीं तो बाजार के माध्यम से विनिमय के जरिये इस्तेमाल करता है। अब यह, कि बाजार का कितना विकास हो गया है या माल अर्थव्यवस्था समूचे समाज में प्रचलन में आ चुकी है या नहीं, कि क्या समाज में श्रम-शक्ति भी माल बन चुकी है या नहीं, इस पर साधारण माल उत्पादन का चरित्र निर्भर करता है। यदि माल अर्थव्यवस्था व्यापक तौर पर प्रचलन में है और श्रम-शक्ति भी माल बन चुकी है तो साधारण माल उत्पादन भी पूंजीवादी होगा। यदि साधारण माल उत्पादन प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के अंतर्गत हो रहा होता है तो यह प्राक्-पूंजीबादी होगा। यानी कि यह छोटे पैमाने का उत्पादन या साधारण माल उत्पादन नहीं है जो सामाजिक-आर्थिक संरचना का या उत्पादन पद्धति का निर्धारण करता है।

I

यह भ्रम की गुंजाइश कि छोटे पैमाने का उत्पादन निश्चित तौर पर प्राक्-पूंजीवादी ही होगा, इस तथ्य से बन जाती है कि प्राकृतिक अर्थव्यवस्था की चारित्रिक विशिष्टता ही छोटे पैमाने का उत्पादन होती है। जबकि पूंजीवाद के साथ बड़े पैमाने के उत्पादन की चारित्रिक विशिष्टता जुड़ी होती है। दरअसल, यह भ्रम उस ऐतिहासिक प्रक्रिया को न समझने में है जिसके अंतर्गत पूंजीवाद का विकास होता है।

मार्क्स ने 'ग्रुण्ड्रिसे' (Grundrisse) में पूंजीवादी उत्पादन पद्धति का विश्लेषण उसके ऐतिहासिक विकास में किया है। पूंजी के अंतर्गत श्रम का **औपचारिक** व **वास्तविक** अधीनीकरण(subsumption) के सारतत्व और मंजिलों की विस्तार से चर्चा करते हुए, वे कहते हैं कि औपचारिक अधीनीकरण पहली मंजिल है जिसमें निरपेक्ष अतिरिक्त मूल्य प्रभुत्वशाली भूमिका अदा करता है, दूसरी मंजिल में सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य प्रभुत्वशाली भूमिका अदा करता है।

पहली मंजिल में पूंजी अपने आप को बिना तकनीकी संघटन में कोई परिवर्तन किये वास्तविक उत्पादन प्रक्रिया में सिर्फ **रुप** में प्रस्तुत करती है। इस प्रक्रिया का महत्वपूर्ण लक्षण है कि उत्पादन प्रक्रिया और मजदूर स्वयं पूंजी के नियंत्रण या कमान में ले आये जाते हैं। यदि प्राक-पूंजीवादी उत्पादन पद्धति से तुलना की जाये तो दबाव की सिर्फ प्रकृति बदल जाती है। प्रत्यक्ष गैर-आर्थिक दबाव का स्थान क्रेता और विक्रेता के बीच ''स्वतंत्र'' विशुद्ध आर्थिक दबाव ले लेता है। पूंजी के अंतर्गत श्रम का **वास्तविक** अधीनीकरण श्रम के तकनीकी अधीनीकरण के परिणामस्वरुप होता है, उस समय मजदूर पूंजीवादी ढर्रे पर संगठित उत्पादन प्रक्रिया से बाहर कार्य करने में असमर्थ हो जाता है।

उसी 'ग्रुण्ड्रिसे' में मार्क्स ने विस्तार से संक्रमणकालीन रुपों की चर्चा की है जिनका विकास प्राक-पूंजीवादी संरचनाओं के फ्रेमवर्क के भीतर होता है और जिनके अंतर्गत उत्पादक पूंजी के स्वरुप के ग्रहण करने से पहले भी पूंजी श्रम का शोषण करती है। पूंजीवादी उत्पादन के संक्रमण में वाणिज्यिक एवं सूदखोर पूंजी द्वारा निभायी गयी भूमिका को बताते हुए यह उल्लेख किया है कि **संक्रमणकालीन रूप खुद पूंजीवादी उत्पादन पद्धति के भीतर और अशंतः उसके द्वारा अनवरत पुनरुत्पादित होते रहते हैं।**

पूंजी के अंतर्गत श्रम के औपचारिक अधीनीकरण की उत्पत्ति तलाशते हुए मार्क्स उस ऐतिहासिक स्थिति का वर्णन करते हैं, जिसने पूंजीवादी सम्बन्धों के विकास को सम्भव बनाया। इसने या तो दासता और भूदासता का या किसानों और दस्तकारों के स्वतंत्र श्रम का स्थान ले लिया है। उत्पादन पद्धति की तकनीकी विशिष्टताओं में बिना कोई परिर्वतन किये पूंजी के अंतर्गत श्रम के औपचारिक अधीनीकरण के ढांचे के भीतर पूंजीवादी शोषण में संक्रमण, निंरतरता को बढ़ाता है और इसलिए श्रम की सघनता और उत्पादकता को बढ़ाता है।

पुरानी उत्पादन पद्धति के विघटन की ऐतिहासिक प्रक्रिया कैसे मुद्रा द्वारा निभायी जाती है, इसका उदाहरण देते हुए मार्क्स कहते हैंः

'' ऐतिहासिक तौर पर, मुद्रा का पूंजी में रूपांतरण अक्सर बेहद सरल और ठोस रूप लेता है। उदाहरण के लिए, व्यापारी इस प्रकार कताई करने वालों और बुनकरों को काम पर लगाता है, जो तब तक इन कार्यवाहियों को गौण ग्रामीण पेशे के बतौर करते थे, उनके गौण पेशे को उनके मुख्य पेशे में बदल देता है, इससे वह उनको उजरती मजदूर के बतौर अपने अधीन ले आता है। अगला कदम उनको अपने घरों से हटाना है और उनको एक कार्यस्थल पर इकट्ठा करना है। यह साधारण प्रक्रिया है, यह स्पष्ट है कि व्यापारी ने कताई करने वालों या बुनकरों के लिए न तो कच्चा माल न औजार और न ही उपभोग के साधन तैयार किये हैं। उसने जो कुछ किया है वह यह कि उनको एक किस्म के श्रम में क्रमशः सीमित कर दिया है, जिसमें वे ***क्रेता***

*पर, **व्यापारी** पर बेचने के लिए निर्भर हो गये हैं,और जो वे सिर्फ **उसके लिए** और **उसके जरिये** अंततोगत्वा उत्पादन करेंगे। शुरु में उसने उनका श्रम उनके उत्पादों को खरीदने के लिए ही क्रय किया था। जैसे ही उन्होंने इस विनिमय मूल्य पर उत्पादन करने में अपने को सीमित कर लिया, और इस प्रकार, सीधे तौर पर **विनिमय मूल्य** उत्पादित करने लगे और जिन्दा रहने के लिए अपने श्रम का पूर्णरूपेण मुद्रा के साथ विनिमय कर लिया, वैसे ही वे उसके चुंगल में आ जाते हैं। अन्त में यह **भ्रम** भी कि वे उसको अपना उत्पाद बेच रहे है, समाप्त हो जाता है। वह उनका श्रम खरीदता है और पहले उत्पाद में लगी उनकी सम्पत्ति ले लेता है। जब तक वह अपनी खुद की उत्पादन लागत को कम करने के लिए उनकी इस **छद्म सम्पत्ति** के बतौर उनके पास रहने नहीं देता, थोड़े समय बाद उनके औजार भी ले लेता है।''*

(मार्क्स, संग्रहीत रचनायें, खण्ड-28,पृ.-434, अंग्रेजी संस्करण, प्र.प्रकाशन मास्को, 1986, अनुवाद हमारा,जोर मूल में)

यहां एक तरफ पुरानी उत्पादन पद्धति का विघटन हो रहा है और दूसरी तरफ व्यापारी पूंजी बिना किसी तकनीकी परिवर्तन के छोटी पूंजी के मालिक को उजरती मजदूर बना लेती हैं। यह पूंजी द्वारा औपचारिक तौर पर श्रम के अधीनीकरण की एक मिसाल है। इसमें यह भी अंतर्निहित है कि छोटी सम्पत्ति के मालिक का यह भ्रम भी बना रह सकता है कि वह अपने श्रम के औजारों का मालिक है। इसमें यह भी सम्भावना हो सकती है कि उक्त व्यापारी बुनकरों को एक जगह न इकट्ठा करें और उनके अन्दर यह भ्रम बना रहे कि वे अपना उत्पाद बेचते हैं। लेकिन दरअसल वे उजरती मजदूर में तबदील हो चुके होते हैं। इन छोटी सम्पत्ति वाले बुनकरों व कताई करने वालों का साधारण माल उत्पादक के रूप में बने रहने का आभास बना रहता है।

लेकिन व्यापारी पूंजी और सूदखोर पूंजी अपने आप में पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध नहीं विकसित कर देती। ये पुरानी व्यवस्था को कमजोर करती हैं। ये इतना जरूरी है कि मुद्रा के रूप में सम्पदा इकट्ठी कर लेती हैं, जो उत्पादन की प्रक्रिया से बिल्कुल अलग और उस पर सवार होकर परिचलन की प्रक्रिया से इकट्ठा होती है। प्राक्-पूंजीवादी सम्बन्धों के विघटन में मुख्य बात यह रही है कि वे उत्पादन सम्बन्ध विघटित हो गये जिनमें उपयोग मूल्य यानी कि उत्पादकों के तात्कालिक उपभोग के लिए उत्पादन प्रभुत्वशाली स्थिति में थे और जबकि विनिमय मूल्य और इसका उत्पादन सम्बन्धों के दूसरे रूप के प्रभुत्वशाली होने की पूर्वकल्पना करने लगता है। इसलिए अगर थोड़ा ज्यादा गहराई से छानबीन की जाय तो यह पाया जाता है कि जब एक हद तक उत्पादक शक्तियों का विकास हो जाता है तभी वे पूर्व अवस्थायें पैदा होती हैं कि मुद्रा एक सम्पदा के रूप से तबदील होकर पूंजी का एक रूप धारण कर लेती हैं और पुरानी व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने की प्रक्रिया में योगदान करती है। व्यापारी और सूदखोर मुद्रा अपने आप न तो नयी उत्पादक शक्तियां पैदा करती हैं और न ही नये उत्पादन सम्बन्धों का सृजन करती हैं। बल्कि वास्तविकता में तो पुरानी व्यवस्था से चिपकी रहती है। हां, मुद्रा के रूप में ऐसी सम्पदा इकट्ठा करती है जो नये आधार पर निर्मित हो रही व्यवस्था के लिए रास्ता सुगम करती हैं। नयी पूंजीवादी उत्पादन पद्धति के लिए परिस्थितियां पुरानी व्यवस्था के भीतर से ही तैयार हो चुकीं होती है। यदि ऐसा नहीं होता तो मुद्रा और बाजार का अस्तित्व तो प्राचीन रोमन साम्राज्य में आ चुका था और व्यापारियों तथा सूदखोरों के हाथों में भारी मात्रा में मुद्रा भी इकट्ठा हो गयी थी, लेकिन उस समाज का पूंजीवादी उत्पादन पद्धति में रूपान्तरण नहीं हुआ। इसका कारण, उस समय के समाज की उत्पादक शक्तियों की वह अविकसित अवस्था है, जिसके कारण वह वहीं मुख्यतया प्राकृतिक अर्थव्यवस्था की स्थिति में बना रहा।

प्राकृतिक अर्थव्यवस्था से माल अर्थव्यवस्था की स्थिति में परिवर्तन के लिए मुद्रा और बाजार का एक हद तक विकास होना जरूरी है। इसके साथ ही श्रम का सामाजिक विभाजन होना जरूरी है। लेनिन इसके अंतर को इस तरह पेश करते हैं:

'' प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के अंतर्गत समाज व्यापक तौर पर समरूप आर्थिक इकाइयों (पितृसत्तात्मक किसान परिवारों, आदिम ग्राम समुदायों, सांमती जागीरों) से बना होता है और ऐसी प्रत्येक इकाई सभी प्रकार की आर्थिक गतिविधियों में – विभिन्न किस्म के कच्चे मालों को प्राप्त करने से लेकर उपभोग के लिए उनकी अंतिम तैयारी तक – लगी रहती है।

माल अर्थव्यवस्था के अंतर्गत विषम आर्थिक इकाइयां अस्तित्व में आती है, अर्थव्यवस्था की अलग-अलग शाखाओं की संख्या बढ़ती जाती है, और एक ही तरह के आर्थिक कार्यों को सम्पन्न करने वाली आर्थिक इकाइयों की संख्या कम हो जाती है। श्रम के सामाजिक विभाजन में यह क्रमिक वृद्धि ही है जो पूंजीवाद के लिए घरेलू बाजार के निर्माण की प्रक्रिया में प्रमुख उपादान है।''

(लेनिन,संग्रहीत रचनायें,खण्ड-3,पृ. सं.-38,प्र.प्र.मास्को, अंग्रेजी संस्करण, अनुवाद हमारा)

माल अर्थव्यवस्था से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में संक्रमण के लिए यह जरूरी है कि श्रम का सामाजिक विभाजन होने के साथ-साथ श्रम-शक्ति भी माल बन चुकी हो। यहां, यह कहने की कोई जरूरत नहीं है कि मैनुफैक्चरिंग का कच्चे माल उद्योग से अलगाव, मैन्युफैक्चर का कृषि से अलगाव, खुद कृषि को एक उद्योग में, अर्थव्यवस्था की एक माल उत्पादक शाखा में रूपान्तरित कर देता है।

II

पूंजीवादी उत्पादन पद्धति अपने ऐतिहासिक विकास क्रम में उत्पादन के प्राक्-पूंजीवादी रूपों का इस्तेमाल करते हुए अपने को स्थापित करती है। पूंजीवाद की विशिष्टता के साथ बड़े पैमाने का उत्पादन जुड़ा हुआ है। लेकिन बड़े पैमाने का उत्पादन उद्योग में छोटे पैमाने के उत्पादन को बहुत आसानी से बाहर कर पाने में अपने को काफी मुश्किल में पाता है। लेकिन उद्योग की तुलना में कृषि में पूंजीवादी विकास को और ज्यादा जटिलताओं और मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। यहां बड़े पैमाने की खेती छोटे पैमाने की खेती को नेस्तनाबूद नहीं कर पाती। बल्कि समय-समय पर छोटे पैमाने की खेती को पूंजीवाद खुद बरकरार रखता है। खेती में पूंजीवाद का विकास जहां बड़े पैमाने की खेती की ओर केन्द्रित रहता है वहीं यह छोटी खेती को भी समाप्त करने में एक हद तक अपने को असमर्थ पाता है और खुद बड़े भू-स्वामियों के हित में यह कोशिश करता है कि छोटी खेती बरकरार रहे।

लेनिन काउत्स्की की कृषि सम्बन्धों पर लिखी पुस्तक की समीक्षा करते हुए इस सम्बन्ध में काउत्स्की के सही निष्कर्षों का हवाला देते हैं:

'' लेकिन कृषि में छोटे उत्पादकों को खदेड़ना बाधित हो जाता है, क्योंकि भू-क्षेत्र सीमित आकार का होता है। छोटी जोतों को बड़ी जोतों द्वारा खरीदना अत्यन्त मुश्किल होता है। कभी-कभी खेती की संघनता से उत्पादों की मात्रा बढ़ा ली जाती है, और इसके कारण भी भू-जोत का आकार छोटा हो जाता है। एक मालिक द्वारा कई भू-जोतों को खरीदकर उत्पादन का संकेन्द्रण बढ़ा लिया जाता है, इस तरीके से बने लैटीफुन्डिया बड़े पैमाने की खेती के उच्चतर रूपों में से एक के आधार का काम करते हैं। अंत में, यह बड़े भू-धाराकों के हित में नहीं होता कि वे छोटी सम्पत्ति वालों को पूर्णतया बेदखल कर दें। वे (छोटे सम्पत्तिधारी-अनुवादक) बड़े भू-स्वामियों को हाथ मुहैया कराते हैं। इस कारण से भू-स्वामी और पूंजीपति अक्सर ही ऐसे कानून पारित करते रहते हैं जो छोटे किसान को कृत्तिम तौर पर बनाये रखे, छोटे पैमाने की खेती उस समय स्थायित्व ग्रहण कर लेती है जब वह बड़े पैमाने की खेती से होड़ करना बन्द कर देती है, और जब वह बड़े पैमाने की खेती के लिए श्रम-शक्ति मुहैया कराने में तबदील हो जाती है। बड़े और छोटे भू-धारकों के बीच के रिश्ते पूंजीपतियों और सर्वहाराओं के बीच के रिश्तों के और ज्यादा नजदीक आ जाते हैं।''(लेनिन, संग्रहित रचनाएं, खण्ड-4, पृष्ठ-96-97, अंग्रेजी संस्करण प्रगति प्रकाशन मास्को, 1972 , अनुवाद हमारा)

इसलिए यह निष्कर्ष निकालना कि छोटे पैमाने की खेती पूंजीवाद समाप्त कर देगा क्योंकि पूंजीवाद की चारित्रिक विशिष्टता ही बड़े पैमाने के उत्पादन में है, ऐतिहासिक तौर पर गलत सिद्ध हो चुका है। छोटे पैमाने की खेती या सरल माल-उत्पादक को खुद पूंजीवाद कायम रखता है और समय-समय पर वह खेती के संकेन्द्रण और विखण्डन की दोनों प्रक्रियायें अपनाता रहता है। इस बात को बहुत पहले ही मार्क्स ने न्यू-राइनिशे टुंग के काल(1850) में देख लिया था कि कैसे समय-समय पर पूंजीपति वर्ग जमीन का संक्रेन्द्रण और विखण्डन दोनों ही करता रहता है।

चूंकि पूंजीवाद के अंतर्गत कृषि का विकास उस रफ्तार से नहीं होता है जिस रफ्तार से उद्योगों का विकास होता है और कृषि की कीमत पर उद्योगों का विकास होता है। इसलिए पूंजीवाद के अंतर्गत कृषि क्षेत्र में शोषण और भी ज्यादा घनीभूत होता जाता है। इससे छोटे किसानों और खेत मजदूरों की स्थिति और भी ज्यादा खराब हो जाती है। छोटे किसानों की स्थिति तो कई बार खेत मजदूरों से भी खराब रहती है। न तो वह अपनी कृषि की आगत(input) के लिए पर्याप्त पूंजी निवेश कर पाता है और न ही वह खेत मजदूर की तरह निश्चित घण्टे तक काम करके अपने को आराम दे सकता है। पारिवारिक श्रम से खेती करने वाले किसान बुरी तरह, समूचे परिवार को, छोटे बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को, खेती व अन्य पारिवारिक श्रम में जोते रखता है। इसके बावजूद उसे अभाव व तंगहाली की ही जिन्दगी मिलती है।

लेनिन ने पूंजीवाद के अंतर्गत छोटे किसानों की तबाही का जिक्र यूं किया हैः

''मुद्रा की सत्ता ने उस फ्रांसीसी किसान को भी कुचल दिया, जो सामन्त - भू-स्वामियों की सत्ता से किये गये किसी दयनीय सुधार द्वारा नहीं बल्कि एक शक्तिशाली लोकप्रिय क्रांति द्वारा मुक्त हुआ था - मुद्रा की इस सत्ता ने हमारे अर्द्ध-दास मुझिक (किसान) को अपने पूरे वजन के साथ बेध डाला। उपकारी सुधारों के परिणामस्वरूप बढ़े हुए कर चुकाने के लिए, कारखानों में बने चन्द छोटे-मोटे ऐसे सामानों की खरीदारी के लिए - जो किसानों के घरों में बने सामानों को किनारे धकेल रहे थे, गल्ला खरीदने आदि कामों के लिए - उसे किसी भी कीमत पर मुद्रा प्राप्त करनी ही थी। मुद्रा की सत्ता ने किसान समुदाय को कुचला ही नहीं उसे विभाजित भी किया। किसानों की भारी आबादी निरंतर बरबाद हो रही थी और सर्वहारा में बदलती जा रही थी। एक छोटी आबादी के बीच में से लोलुप कुलकों और उद्यमी मुझिकों का एक छोटा समूह पैदा हुआ जिसने किसान फार्मों और किसान की जमीन को हथिया लिया और उभरते हुए ग्रामीण पूंजीपति वर्ग का मुख्य हिस्सा बन गया। किसानों के ''गैर-किसानीकरण'' की यह सतत प्रक्रिया,धीमी और पीड़ादायी विनाश की यह प्रक्रिया सुधार के बाद के चालीस वर्षो की विशिष्टता रही है। किसान भिखारियों की स्थिति में पहुंच गया। घास-पात पर गुजारा करते हुए, चिथड़ों में लिपटा हुआ था, वह अपने मवेसियों के साथ रहता था, यदि कहीं भी जाने की जगह थी तो वह अपना एलॉटमेण्ट छोड़कर भाग जाता था और यहां तक की यदि वह किसी को जमीन का एक टुकड़ा देने के लिए राजी कर पाता था तो उससे मुक्त होने के लिए कीमत तक चुकाता था क्योंकि इस जमीन के लिए किया जाने वाला कर-भुगतान उससे पैदा की गयी आय से अधिक होता था। किसान लम्बी भुखमरी के शिकार थे और अकाल एवं बुरी फसल के वर्षो में होने वाली महामारी के प्रकोपों से, जिनकी बारम्बारता लगातार बढ़ती जा रही थी, दसियों हजार की संख्या में मौत की भेंट चढ़ जाते थे।'' (लेनिन, मजदूर पार्टी और किसान, संग्रहीत रचनायें खण्ड-4, पृ.-422-423, अंग्रेजी संस्करण, प्र.प्र.मास्को, अनुवाद हमारा)

लेनिन ने यहां पर पूंजीवादी विकास के परिणामस्वरूप छोटे-किसानों की गिरती हालत और ग्रामीण इलाकों में किसानों के विभेदीकरण की प्रक्रिया का जिक्र किया है। पूंजीवाद छोटे किसानों की स्थिति में सुधार नहीं करता बल्कि उन्हें और ज्यादा परेशानियों व मुसीबतों में ढकेलता है। यहां तक कि उन्हें कंगाली की हद तक

पहुंचा देता है। पूंजीवाद के अंतर्गत सरल माल-उत्पादक की क्या स्थिति होती है, इसका विश्लेषण करते हुए, लेनिन काउत्स्की की भूमि सम्बन्धों पर लिखी पुस्तक का हवाला देते हुए, कहते हैं:

*'' यदि छोटे किसान का कृषि उत्पादन माल उत्पादन के दायरे में नहीं लाया जाता, यदि वह घरेलू अर्थव्यवस्था का महज एक हिस्सा है, तो यह आधुनिक उत्पादन पद्धति की केन्द्रीकरण करने वाली प्रवृत्तियों के दायरे से भी बाहर रहता है। चाहे उसकी विखण्डित अर्थव्यवस्था कितनी भी अतार्किक हो, चाहे इससे प्रयास की कितनी ही बर्बादी होती हो, वह इससे ऐसे बुरी तरह चिपका रहता है, जैसे उसकी पत्नी अपनी फटेहाल घरेलू अर्थव्यवस्था से चिपकी रहती है, जो श्रम शक्ति के भारी खर्च के बावजूद इसी तरह के अंनत दुखदायी परिणाम उत्पन्न करती है। लेकिन यही वह दायरा है जिसमें वह किसी के शासन के अधीन नहीं है और शोषण से स्वतंत्र है। परिस्थिति उस समय बदल जाती है जब प्राकृतिक अर्थव्यवस्था का स्थान माल अर्थव्यवस्था ले लेती है। तब किसान को अपना उत्पाद बेचना होता है, औजार खरीदना होता है और **जमीन खरीदनी होती है**। जब तक किसान **साधारण माल-उत्पादक** बना रहता है, वह उजरती मजदूर के जीवन स्तर में संतुष्ट रह सकता है, उसे न तो मुनाफे की और न ही किराये की जरूरत होती है, वह पूंजीवादी उद्यमी की तुलना में जमीन की ज्यादा ऊंची कीमत अदा कर सकता है। लेकिन **साधारण माल उत्पादन** का स्थान **पूंजीवादी उत्पादन** ले लेता है। यदि, उदाहरण के लिए किसान ने अपनी जमीन को बंधक रख दिया है, तो उसे उस पर किराया भी देना होगा, जिसे उसने कर्जदाता को दे रखा है। विकासक्रम की इस मंजिल में किसान को सिर्फ औपचारिक तौर पर साधारण माल-उत्पादक के बतौर माना जा सकता है। वास्तविकता (defacto) में उसे आमतौर पर **पूंजीपति** - कर्जदाता,व्यापारी पूंजीवादी उद्यमी - से निपटना पड़ता है, जिससे इसे ''सहायक रोजगाार'' लेना होगा यानि की उसको (पूंजीपति को-अनु०) इसे अपनी श्रमशक्ति बेचनी होगी। इस मंजिल पर, हम दोहराते हैं कि काउत्स्की पूंजीवादी समाज में बड़े पैमाने की खेती की तुलना छोटे पैमाने की खेती से करते हैं - किसान के लिए अपने श्रम को न गिनने की सम्भावना का उसके लिए सिर्फ एक मतलब है कि वह खुद मरने तक काम करता रहे और समय-समय पर अपने उपभोग में कटौती करता रहे।'' (लेनिन, संग्रहीत रचनायें, खण्ड-4, पृष्ठ-124-25, अंग्रेजी संस्करण, प्र. प्र. मास्को, 1972 अनुवाद हमारा, जोर लेनिन का)*

पूंजीवाद के अंतर्गत साधारण माल-उत्पादक किसानों की स्थिति खेतीहर सर्वहारा वर्ग के ज्यादा नजदीक होती है। इसके श्रम का औपचारिक अधीनीकरण पूंजी कर लेती है, जैसे कि इसके पहले के मार्क्स के एक उद्धरण में एक व्यापारी द्वारा कताई करने वालों और बुनकरों के श्रम को अपने अधीन कर लेने के उदाहरण में, दिखाया जा चुका है। छोटी खेती का साधारण माल-उत्पादकस्वरूप उसे स्वरूप में ही माल उत्पादक, बनाये रखता है जबकि उसकी अंतर्वस्तु उसे मजदूर में तबदील कर देती है।

III

यह बात सही है कि साधारण माल उत्पादन दास समाज के समय से अस्तित्व में रहा है। लेकिन दास समाज में उत्पादन मुख्यतया दास श्रम से होता था। मनुष्य को दास बनाकर स्वयं मानव का भी विनिमय होने लगा। व्यापार का विस्तार, मुद्रा का चलन, सूदखोरी और रेहन की प्रथा, ये सभी दास समाज में अस्तित्व में आ चुके थे। उस समय का छोटा माल-उत्पादक, जो कि छोटे स्वतंत्र किसानों और हस्तकारों के तौर पर था, वह इसी दास व्यवस्था के दायरे के भीतर अपने उत्पादन के एक हिस्से से अपनी जरूरतें पूरा करता था बाकि हिस्सा मुद्रा पाने के लिये व्यापारी के हवाले करता था जिससे कि वह अपनी अन्य जरूरतें व राज्य के करों का भुगतान कर सके। उस समय न तो उत्पादक-शक्तियों का विकास इस हद तक

हुआ कि छोटा माल-उत्पादक समूची अर्थव्यवस्था से एकाकार हो सके और न ही ऐसा कोई राष्ट्रीय या एकीकृत बाजार विकसित हुआ था। हां,यह सही है कि सामाजिक श्रम विभाजन की शुरुआत हो चुकी थी। कृषि और दस्तकारी में श्रम विभाजन सामने आ चुका था। इसके साथ ही पशुपालन में वृद्धि हो चुकी थी। छोटे पैमाने के कृषि उत्पादक को किसी हद तक दिवालिया होने का खतरा बना रहता था। यह साधारण माल-उत्पादक दिवालिया होने की स्थिति में दास बनने के अलावा और कुछ नहीं बन सकता था। जैसे ही उसकी छोटी सी खेती गिरवी रखी गयी कि वैसे ही उसके दास बनने का रास्ता प्रशस्त हो गया। दिवालिया छोटा किसान या दस्तकार, दास बनने से बचने के लिए इधर-उधर, भागते-फिरते थे। लेकिन उस समय की उत्पादन पद्धति में साधारण माल-उत्पादक अपनी इस हैसियत को खोने के वाद स्वतंत्र नागरिक की स्थिति में नहीं रह सकता था। इसका कारण,वह उत्पादन पद्धति थी जिसके अन्तर्गत यह साधारण माल-उत्पादक कार्य कर रहा था ।

दास समाज में दास मालिक और दास, ये ही दो बुनियादी वर्ग थे। व्यापारी, सूदखोर, दस्तकार और छोटे-छोटे स्वतंत्र किसान, ये उस समय के अन्य वर्ग थे। व्यापारी और सूदखोर इसी उत्पादन पद्धति में कार्य करते थे। एंगेल्स के अनुसार,*''व्यापार के विस्तार, मुद्रा का चलन, सूदखोरी, भू-स्वामित्व और रेहन की प्रथा इन सब चीजों के साथ यदि एक तरफ एक छोटे से वर्ग के हाथ में बड़ी तेजी से धन एकत्रित तथा केन्द्रित होने लगा, तो दूसरी तरफ आम लोगों की गरीबी बढ़ने लगी तथा तबाह और दिवालिया लोगों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी। धनिकों के इस नये अभिजात वर्ग ने, जिस हद तक वह कबीलों के पुराने कुलीनों से भिन्न था, पुराने कुलीनों को स्थायी रूप से पृष्ठभूमि में धकेल दिया (एथेंस में, रोम में और जर्मनी में यही हुआ)। और धन के आधार पर स्वतंत्र मनुष्यों के भिन्न-भिन्न वर्गो में इस तरह बंट जाने के साथ ही साथ यूनान में खासतौर पर दासों की संख्या में बड़ी भारी वृद्धि हो गयी, जिनकी बेगार पर पूरे समाज का ऊपरी ढांचा खड़ा किया गया था। ''(एंगेल्स, मार्क्स-एंगेल्स संकलित रचनायें, खण्ड-3,भाग-2,पृ. सं-196, हिन्दी संस्करण, प्र. प्र. मास्को)*

मार्क्स, इतिहासकार निबूहर को उद्धृत करते हैं:

'' विपदा के समयों में खुद को और अपने आश्रितों को बेचने का अधिकार, एक कष्टदायी आम अधिकार था। यह उत्तर में साथ ही साथ ग्रीक और एशिया के लोगों के बीच प्रचलन में था। कर्ज लेने वाले द्वारा कर्ज अदा करने में असमर्थ होने पर कर्जदाता द्वारा उसे गुलाम बना लेने का और यथासम्भव कर्ज की अदायगी के लिए या तो उसके श्रम को या व्यक्ति को बेचने का अधिकार लगभग उतना ही व्यापक था।'' (मार्क्स, संग्रहीत रचनायें, खण्ड-28 पृ. -425, अंग्रेजी संस्करण, प्र प्र. मास्को, अनुवाद हमारा)

यहां इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि दास प्रथा में साधारण माल-उत्पादक के कर्ज न अदा करने ही स्थिति में उसके सामने सिर्फ एक रास्ता होता था कि वह किसी का गुलाम बन जाये। उसके सामने स्वतंत्र मजदूर बनने या भू-दास बनने का भी रास्ता खुला नहीं था। इसका कारण उस समय की उत्पादक शक्तियों का विकास इस स्थिति में नहीं था कि यह वर्ग अस्तित्व में आते। समाज की उस समय की उत्पादन पद्धति के अनुरूप ही साधारण माल-उत्पादक के चरित्र का निर्धारण होता है। इसलिए दास प्रथा के समय के साधारण माल उत्पादन की स्थिति एकदम भिन्न सामाजिक व्यवस्था की है, उसकी तुलना मौजूदा समय के साधारण माल उत्पादन से करना हास्यास्पद है।

इसी प्रकार सामंतवाद के अंतर्गत भी साधारण माल उत्पादन होता रहा है। सामंती उत्पादन सम्बन्धों के अंतर्गत आम तौर पर घरेलू आधार पर छोटे पैमाने का उत्पादन होता था। लेकिन यह भी प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के दायरे में होता था। हालांकि इस दौरान उत्पादक शक्तियों का विकास हो चुका था और व्यापार में भी भारी विकास हो गया था। इस उत्पादन प्रणाली के तहत सामंत किसानों से जमीन पर लगान लेता था और किसानों को सामंतों के यहां बेगार करनी पड़ती थी। जैसे-जैसे मुद्रा का प्रचलन बढ़ता गया, सामंती लगान का रूप भी बदलता गया। पहले वह, श्रम लगान के रूप में था, बाद में वह वस्तु लगान के रूप में आया

और सबसे अन्त में मुद्रा लगान के रूप में आया। सामंती समाज में किसानों का साधारण माल उत्पादन का आधार निजी मालिकाना और निजी श्रम था। इसका उद्देश्य विनिमय होता था। छोटे माल-उत्पादक को अपने उत्पाद को बाजार में बेचना होता था लेकिन चूंकि प्रत्येक माल-उत्पादक भिन्न-भिन्न उत्पादन हालत, कुशलता और श्रम की सघनता के साथ काम करता था, इसलिए प्रत्येक किस्म के माल पर श्रम की लागत अलग-अलग आती थी। दूसरी तरफ, एक ही किस्म के माल समान दाम पर बेचने होते थे। इससे एक अंतरविरोध पैदा होने लगा। इसमें कुछ सरल माल-उत्पादक सम्पन्न होने लगे लेकिन अधिकांश माल-उत्पादक गरीब होते गये। इस प्रकार साधारण माल-उत्पादकों में ध्रुवीकरण होने लगा।

सामंती समाज में इसी प्रकार, होड़ को रोकने के लिए अलग-अलग हस्तकलाओं के गिल्ड (संघ) बने थे। गिल्ड भी सामंती आधार पर बने थे। गिल्ड-मास्टर और कारीगर व अपरेन्टिस के बीच के रिश्ते पितृसत्तात्मक थे। ऐसे गिल्ड छोटे माल-उत्पादकों के बीच ध्रुवीकरण को सीमित करते थे। लेकिन जैसे-जैसे माल अर्थव्यवस्था का विकास होता गया, वैसे-वैसे कुछ सफल व सम्पन्न गिल्ड-मास्टर गिल्ड के नियमों का उल्लंघन करने लगे और अपने यहां निश्चित संख्या से ज्यादा कारीगर और अपरेन्टिस रखने लगे तथा उनके काम करने के घण्टे बढ़ा दिये। उत्पादन तकनीक के बढ़ने तथा काम के घण्टे बढ़ाने से, अब ये गिल्ड मास्टर ज्यादा से ज्यादा किराये के मजदूर रखने लगे। इससे, गिल्डों के बीच भी ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तेज हो गयी।

ग्रामीण इलाकों में भी माल अर्थव्यवस्था के और ज्यादा विकसित होते जाने से जमींदार किसानों से मुद्रा में लगान लेने लगे। इससे किसानों की बाजार पर निर्भरता बढ़ने लगी। वे मुद्रा प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक सूदखोरों पर निर्भर रहने लगे। व्यापारी भी किसान की मजबूरी का फायदा उठाकर, उनको मजबूरी में उनका माल बेचने के लिए बाध्य करने लगा। इस तरह, सामंती समाज के अन्दर ही किसानों के बीच ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तेज हो गयी। इसी समाज व्यवस्था में सरल माल- उत्पादकों के बीच ध्रुवीकरण होने से एक तरफ ऐसे लोग आने लगे जो सम्भावित मजदूर बन सकते थे। हालांकि उनके पास अभी अपने उत्पादन के औजार थे। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सांमती समाज के अन्दर साधारण माल-उत्पादक लम्बे समय तक एक छोटा किसान या दस्तकार के बतौर बना रहता है और वह जमींदार से या गिल्ड मास्टर से पितृसत्तात्मक सम्बंधों से बंधा रहता है। महाजनी और सूदखोर पूंजी भी सांमती समाज में मुद्रा संचय का काम और ज्यादा तीव्र कर देती है। बाजार का विकास तो पहले की यानी दास प्रथा वाले समाज की तुलना में काफी बढ़ गया है, लेकिन मुख्य तौर पर स्थानीय बाजार ही प्रमुख है। ये स्थानीय बाजार छोटे उत्पादकों के मालों के क्रय-विक्रय के केन्द्र होते हैं। ये भी अलग-अलग खेतों द्वारा, उनके आपस में असंख्य मध्ययुगीन बंधनों द्वारा और मध्ययुगीन निर्भरता के द्वारा अलग-थलग रहते हैं। ऐसी स्थिति में साधारण माल उत्पादक गैर आर्थिक दबाव में रहते हुए, निरंतर दरिद्रता और बदहाली में जीवन जीते हुए, उन्हीं सामंती बंधनों में जीता है और उस समय तक वैसे ही अलग-थलग, बर्बरता की हालत में जीने को अभिशप्त होता है, जब तक कि सामंती उत्पादन प्रणाली के भीतर से नयी उत्पादन प्रणाली पैदा होने की परिस्थितियां नहीं पैदा हो जाती हैं।

चाहे दास प्रथा का समाज हो, या चाहे सामंती समाज हो, दोनों में साधारण माल-उत्पादक प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के अधीन होता है। माल उत्पादन अभी समाज की आम परिघटना नहीं होती। इन दोनों समाज व्यवस्थाओं में उत्पादन मुख्यता कृषि से सम्बन्धित होता है और भारी आबादी किसानों की होती है। इसलिए इन दोनों अवस्थाओं में साधारण माल उत्पादक किसान व दस्तकार लाख तबाह-बर्बाद होने के

बाद भी उन्हीं अवस्थाओं में बना रहता है। यदि दास समाज में वह तबाह-बर्बाद होता है तो वह दास प्रथा के समाज में कहीं स्थान पाता है या जब दास प्रथा विघटित हो रही होती है तो उसका रूपान्तरण भू-दास के तौर पर होता है। सामंती समाज में साधारण माल-उत्पादक इसी प्रकार सांमती समाज व्यवस्था का अंग बना रहता है। इसके विघटन के समय इस वर्ग के भीतर ध्रुवीकरण होता है और इसमें एक हिस्सा सम्भावी मजदूर के तौर पर विकसित होता है।

कहने का अर्थ यह है कि साधारण माल उत्पादक की मौजूदगी किसी भी समाज व्यवस्था के चरित्र का निर्धारण नहीं करती। यह जिस समाज व्यवस्था के अंदर रहता है, उस समाज व्यवस्था के विघटन तक उसी समाज की उत्पादन प्रणाली का अंग बना रहता है।

पूंजीवादी समाज में साधारण माल-उत्पादक को ऐसे हालात में रहना होता है जहां समूची उत्पादन प्रणाली पर पूंजी का आधिपत्य है। विशालकाय उद्योग और बैंक तथा वित्तीय संस्थायें समूची अर्थव्यवस्था पर अपनी पकड़ बनायें होती हैं। एकीकृत राष्ट्रीय बाजार का निर्माण हो चुका होता है। जहां माल अर्थव्यवस्था अपने सर्वोच्च रूप में स्थापित हो चुकी होती है एवं श्रम शक्ति भी माल बन चुकी होती है। कृषि का उद्योग से अलगाव और कृषि को भी उद्योग की एक शाखा के रूप में तबदील कर दिया गया होता है। इससे पहले की व्यवस्थाओं में कृषि मुख्य थी और उद्योग उसकी शाखा थे। इस व्यवस्था में यह स्थिति उलट जाती है। इस हालात में होने वाले साधारण माल उत्पादन की समरूपता सामंती समाज के साधारण माल उत्पादन के साथ दिखाना और फिर इसे अर्द्ध सामंती सम्बन्ध बताना, सरासर गलत है और यह गलती उस ऐतिहासिक प्रक्रिया को न समझने में हैं जिसके अन्तर्गत पूंजीवाद का विकास होता है तथा पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली संक्रमणकालीन रूपों को अपने में आत्मसात करते हुए और प्राक्-पूंजीवादी रूपों का इस्तेमाल करते हुए अपने को स्थापित करती है।

IV

वर्तमान भारतीय समाज में छोटे पैमाने की खेती या साधारण माल उत्पादन का भविष्य क्या है? कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को इस सवाल पर क्या रुख अपनाना चाहिए? क्या उन्हें यह रुख अपनाना चाहिए कि इस छोटे मालिक की एकता धनी किसानों और मध्यम किसानों के साथ कायम की जाय ? नव-जनवादी क्रांति की मंजिल को मानने वाले हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आन्दोलन के संगठनों की यही समझ है।

उनकी इस समझ का गलत आधार एक तरफ तो छोटे उत्पादकों के चरित्र के इस मूल्यांकन में ही निहित है कि वे पूंजीवादी व्यवस्था के अंग के बतौर नहीं बल्कि प्राक्-पूंजीवादी व्यवस्था के अंग के बतौर है। दूसरी उनकी गलत समझ खुद नव-जनवादी क्रांति के बारे में है।

दूसरी गलत समझ उनकी इस आधार पर बनती है कि नव-जनवादी क्रांति सारतः पूंजीवादी-जनवादी क्रांति ही होती है। अन्तर सिर्फ यह होता है कि पूंजीपति वर्ग जहां पूंजीवादी-जनवादी क्रांति का नेता होता है वहीं नव-जनवादी क्रांति मजदूर वर्ग के नेतृत्व में सम्पन्न होती है। इससे वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि नव-जनवादी क्रांति को सम्पन्न करने के बाद एक सीमा तक पूंजीवादी विकास होने देंगे और जब उत्पादक शक्तियों का विकास एक हद तक हो जायेगा तब जाकर वे समाजवादी निर्माण की ओर आगे बढ़ेंगे। माओ ने नव-जनवादी क्रांति और समाजवादी क्रांति के बीच के सम्बन्धों के बारे में चर्चा करते हुए कहा था कि जैसे ही साम्राज्यवाद- विरोधी और सामन्तवाद-विरोधी कार्यभार सम्पन्न हो जायेंगे, चीन

में समाजवादी निर्माण की तरफ कदम बढ़ाना शुरू हो जायेगा। चूंकि चीन में नव–जनवादी क्रांति का नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी, इसलिए जनता के जनवादी अधिनायकत्व वाले राज्य को समाजवादी निर्माण की दिशा में जाने के लिए किसी बड़े प्रतिरोध का सामना या नयी क्रांति करने की आवश्यकता नहीं थी। राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग और धनी किसान ऐसी हालत में नहीं थे, कि वे सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व को चुनौती दे सकें। हालांकि शुरु में माओ ने नव–जनवादी क्रांति और समाजवादी रूपान्तरण के बीच एक अपेक्षाकृत लम्बे समय की बात की थी लेकिन व्यवहार में यह समाजवादी रूपान्तरण की प्रक्रिया जल्दी ही लागू होना, शुरु हो गयी। सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व वाले जनता के जनवादी अधिनायकत्व वाले राज्य को इसलिए सर्वहारा अधिनायकत्व का एक रूप माना गया क्योंकि नव–जनवादी क्रांति में ही समाजवादी रूपान्तरण की ओर जाने की अवश्यम्भाविता निहित है।

हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी जो नव–जनवादी क्रांति के तहत एक हद तक पूंजीवाद के नियंत्रित विकास की वकालत करते हैं, वे वस्तुतः नव–जनवादी क्रांति के बीच के सिद्धान्त का यांत्रिक तरीके से अनुकरण कर रहे हैं। वे उसके अनुभव को भी नजरअन्दाज कर रहे हैं।

हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी नव–जनवादी क्रांति की मंजिल को पेश इस तरीके से करते हैं जिसमें क्रांति के सम्पन्न हो जाने के बाद भी वे उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए एक हद तक पूंजीवादी विकास की छूट देंगे। उनके लिए नव–जनवादी क्रांति की मंजिल नियंत्रित ही सही लेकिन पूंजीवादी विकास की मंजिल है। यह सरासर नव–जनवादी क्रांति के बारे में गलत समझ का परिणाम है। जैसे ही नव–जनवादी क्रान्ति के साम्राज्यवाद–सामंतवाद विरोधी कार्यभार सम्पन्न हो जायें, वैसे ही समाजवाद की ओर कदम बढ़ाने की लाइन, माओ की है। लेकिन हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी राजसत्ता में मजदूर वर्ग के नेतृत्व में क्रांतिकारी वर्गो का अधिनायकत्व कायम हो जाने के बाद, ''उत्पादक शक्तियों के विकास'' करने की लाइन पेश करते हैं। यह ल्यू शाओ ची और देंग की लाइन है।

अब हम इस बात पर विचार करें कि यदि हमारे देश में छोटे पैमाने का उत्पादन प्रचलन में है और अधिकांशत: इन छोटे उत्पादकों का उत्पादन उनके प्रत्यक्ष निजी उपभोग के लिए होता है तो क्या इससे नव–जनवादी क्रांति की मंजिल तय होती है? हमारा कहना है कि नहीं। इससे नव–जनवादी क्रांति की मंजिल नहीं तय होती है।

उस समय जब फ्रांस में छोटी जोत वाले किसानों का प्राचुर्य था और फ्रांस की सामाजिक–जनवादी पार्टी ने छोटे किसानों को अपनी तरफ मिलाने के लिए, उनकी छोटी किसानी को कायम रखते हुए, उन्हें रियायतें देने की बात अपने कार्यक्रम में शामिल की थी तो एंगेल्स ने चेतावनी देते हुए कहा था :

'' छोटी जोत वाले किसानों को हम न तो आज और न ही भविष्य में कभी भी यह आश्वासन दे सकते हैं कि पूंजीवादी उत्पादन की प्रचण्ड शक्ति से उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति और उनके व्यक्तिगत उद्यम की रक्षा की जा सकती है।''(एंगेल्स, मार्क्स–एंगेल्स संकलित रचनायें, खण्ड–3,भाग–2, पृ.संख्या–383, प्र.प्र. मास्को)

और आगे,

'' अतः ऐसे वादे करने से जैसे की यह कि हम छोटी जोत को स्थायी रूप से बरकरार रखना चाहते हैं, हम पार्टी का और छोटे किसानों का और बड़ा अहित नहीं कर सकते हैं। ऐसा करने का मतलब सीधे–सीधे किसानों की मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध कर देना और पार्टी को हुल्लड़वाज यहूदी विरोधियों के निम्न स्तर पर ले आना होगा। इसके विपरीत, हमारी पार्टी का यह कर्तव्य है कि किसानों को बारम्बार स्पष्टता के साथ जताये कि पूंजीवाद का बोलबाला रहते हुए उनकी स्थिति पूर्णतया निराशापूर्ण है,कि उनकी छोटी जोतों को इस रूप में बरकरार रखना एकदम असम्भव है, कि बड़े पैमाने का पूंजीवादी उत्पादन उनके छोटे उत्पादन की अशक्त, जीर्ण–शीर्ण प्रणाली को उसी तरह कुचल देगा, जिस तरह रेलगाड़ी ठेलागाड़ी को कुचल देती है। ऐसा करके हम आर्थिक विकास की अनिवार्य प्रवृत्ति के अनुरूप कार्य करेंगे। और यह विकास एक न एक

दिन छोटे किसानों के मन में हमारी बात को बैठाये बिना नहीं रह सकता।'' (एंगेल्स,मार्क्स-एंगेल्स संकलित रचनायें, खण्ड-3, भाग-2, पृ.सं.-384-85, प्र.प्र.मास्को)

यहां पर एंगेल्स छोटे किसानों के प्रति मजदूर वर्ग की पार्टी के रूख को स्पष्ट करते हैं और बताते हैं कि उनको छोटे किसान के तौर पर पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के अन्तर्गत नहीं बचाया जा सकता। वे इसके साथ ही छोटे किसानों व दस्तकारों के ऊपर पूंजीपतियों और बड़े जमींदारों के हमलों के विरुद्ध मजदूर वर्ग की पार्टी को संघर्ष करने की सलाह देते हैं।

इसी संदर्भ में, लेनिन ने छोटे किसानों के प्रति मजदूर वर्ग की पार्टी के रुख की चर्चा निम्न शब्दों में की हैंः

''छोटे किसान खुद को मजदूर वर्ग के आंदोलन से जोड़कर और समाजवादी व्यवस्था के लिए संघर्ष में एवं जमीन तथा उत्पादन के अन्य साधनों (कारखानों, काम,मशीनें इत्यादि) को सामाजिक सम्पत्ति के रूप में बदल देने में मजदूरों की मदद करके ही अपने आप को पूंजी की जकड़ से मुक्त कर सकते हैं। छोटे पैमाने की खेती और छोटी जोतों को पूंजीवाद के चतुर्दिक हमले से बचाकर किसान समुदाय को बचाने का प्रयास सामाजिक विकास की गति को अनुपयोगी रूप से धीमा करना होगा। इसका मतलब पूंजीवाद के अन्तर्गत भी खुशहाली की सम्भावना की भ्रांति से किसानों को धोखा देना होगा। इसका मतलब मेहनतकश वर्गों में फूट पैदा करना और बहुमत की कीमत पर अल्पमत के लिए एक विशेष सुविधाप्राप्त स्थिति पैदा करना होगा। इसीलिए सामाजिक-जनवादी इस तरह की निरर्थक और गलत संस्थाओं के विरुद्ध हमेशा संघर्ष करेंगे, जैसे वह संस्था जो किसान को अपनी जमीन बेचने से रोकती है या जैसे सामूहिक जिम्मेदारी, या ग्राम कम्यूनों को स्वतंत्रतापूर्वक छोड़ने की किसानों की आजादी पर या इनमें दूसरी सामाजिक जागीर के लोगों को स्वतंत्रतापूर्वक शामिल करने पर प्रतिबंध की व्यवस्था।...''(लेनिन, मजदूर पार्टी और किसान, संग्रहित रचनाएं, खण्ड-4, पृ-422-43, प्र.प्र.मास्को, अंग्रेजी संस्करण, अनुवाद हमारा)

लेनिन यह बात रूस में पूंजीवादी-जनवादी क्रांति के दौर में कह रहे थे। उस समय रूस में सांमती अवशेष आज के भारत की तुलना में बहुत ज्यादा थे। तब भी, जब पूंजीवादी-जनवादी क्रांति का दौर था, उन्होंने छोटी किसानी अर्थव्यवस्था को बचाने के वायदे के खिलाफ चेतावनी दी थी।

यदि छोटा माल-उत्पादक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत है तो उसकी मुक्ति का सवाल नव-जनवादी क्रांति किस तरह से हल करेगी ? नव-जनवादी क्रांति में मूलतया सांमती बंधनों में जकड़ी खेती होती है। उसमें गरीब किसान और मध्यम किसान तक सांमती बंधनों में जकड़े होते हैं। हमारे यहां के छोटे माल उत्पादक, को किन सांमती बंधनों ने जकड़ रखा है? इसका जबाव हमारे देश के जब कुछ क्रांतिकारी संगठन देने का प्रयास करते हैं तो वे कभी अधिरचना की कुछ बातों को मसलन जाति पर आधारित पेशों का जिक्र करते हैं तो कभी इस सवाल को साम्राज्यवाद के मत्थे डाल देते है और कहते हैं कि साम्राज्यवाद का सामाजिक आधार सामन्तवाद होता है। इसलिए यहां पर चूंकि साम्राज्यवाद है तो सामंतवाद स्वतः होगा ही। वे जाति आधारित पेशों के संदर्भ में यह भूल जाते हैं कि उनकी भी अंतर्वस्तु मूलतः पूंजीवादी हो चुकी है और ये पेशे अधिकांशतः मुद्रा के लेन-देन पर आधारित हो चुके हैं। जहाँ तक साम्राज्यवाद के सामाजिक आधार का प्रश्न है, वह एक समय में सामंतवाद को बनाये हुए थे, आज जब सामंतवाद खुद ही भारतीय अर्थव्यवस्था से कोने-अंतरे में चला गया है, उस समय साम्राज्यवाद अपने सामाजिक आधार उस वर्ग को बनायेगा जो प्रभावशाली व ताकतवर और सत्ता में है। यह भारतीय पूंजीपति वर्ग है और इसके हिस्से के बतौर ग्रामीण पूंजीपति वर्ग है जिसमें पूंजीवादी फार्मर से लेकर कुलक तक आ जाते हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत सामंतवाद की प्रभावशाली शक्ति में मौजूद रहने के तर्क, उनको अन्धी गली में ले जाते हैं।

यह ताज्जुब की बात है कि जब वे छोटे किसानों की तबाही व बर्बादी की चर्चा करते हैं तब उनकी मांगें यथा - खाद, पानी, बिजली के दामों में कमी तथा राज्य से खाधान्न सब्सिडी, इत्यादि पेश करते हैं तो, ये सभी पूंजीवाद से रियायतें पाने की मांगें होती हैं और जब क्रांतिकारी रूपान्तरण में छोटे किसानों की भागीदारी

की बात होती है, तो वे सामंतवाद विरोधी बातें करते हैं। छोटे उत्पादकों की तात्कालिक मांगें उनकी मूलयता सामंतवाद विरोधी नहीं होती। यह बात दूसरी है कि उनकी तात्कालिक मांगे भी वस्तुगत तौर पर धनी किसानों व पूंजीवादी फार्मरों के पक्ष में ज्यादा होती है, छोटे किसानों के पक्ष में कम। लेकिन तात्कालिक मांगों के संदर्भ में वे व्यवहारवादी हो जाते हैं और व्यवहारिता के आधार पर राज्य से पूंजीवाद के दायरे के भीतर की रियायतें चाहते हैं, यह उनकी विरोधाभासी स्थिति, उन्हें सैद्धान्तिक तौर पर दिवालिया सिद्ध करती है।

यदि छोटे माल-उत्पादक का सामंतवाद के साथ कोई अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष अंतरविरोध नहीं है तो छोटे माल-उत्पादक की सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष में भूमिका कैसे बनेगी? इस सवाल का जबाव हमारे नव-जनवादी क्रांति की मंजिल बताने वाले साथी यह कह कर देते है कि चूंकि वे उपभोग के लिए उत्पादन कर रहे हैं, कि वे पारिवारिक श्रम के साथ उत्पादन कर रहे हैं, कि उनके उत्पादन में कोई स्थिर पूंजी का निर्माण नहीं होता है और कि इसके फलस्वरूप वे विस्तारित पैमाने का उत्पादन नहीं कर रहे है, इसीलिए यही अपने आप में सामंती उत्पादन पद्धति को सिद्ध करने के लिए काफी है। इसके साथ ही वे सूदखोरी और बंटाईदारी जैसी प्रथा का जिक्र करके सामंती उत्पादन पद्धति से ग्रसित होने का और ठप्पा लगा देते हैं। हमारे ये साथी, बिना सामंत के सामंतवाद की चर्चा करते हैं। जिनको ये सामंत बताते भी हैं वे वस्तुतः कुलक या पूंजीवादी भू-स्वामी होता है। वैसे इनसे भी छोटे माल-उत्पादक के कोई सामंती अंतरविरोध नहीं बनते।

नव-जनवादी क्रांति की मंजिल बताने वाले संगठन, छोटे उत्पादक किसान या साधारण माल उत्पादन करने वालों को सामंतवाद से मुक्ति दिलाना चाहते हैं जिसके वे शिकार नहीं हैं। पूंजीवाद उनको तबाह और बर्बाद कर रहा है, वे इससे मुक्ति दिलाने का कार्यक्रम उनके सामने नहीं पेश करते। बल्कि उनकी रणनीति में तो पूंजीपति वर्ग के एक हिस्से के साथ इन छोटे माल-उत्पादकों का संश्रय शामिल है। यह और कुछ नहीं, छोटे माल-उत्पादकों को उसी पूंजीवाद के हवाले करना है जिसके कारण वे तबाह और बर्बाद हो रहे हैं।

यह अजीबोगरीब है कि वे भारतीय कृषि में एक हद तक का पूंजीवादी विकास मानते हैं और विकास की दिशा भी पूंजीवादी मानते हैं। तब भी, सामंती उत्पादन सम्बन्धों को भारत में उत्पादक शक्तियों के विकास की सबसे बड़ी एवं केन्द्रीय बाधा के तौर पर सूत्रीकरण करते हैं। उनके साहित्य इस बात से भरे पड़े रहते हैं कि खाद, पानी, बिजली, कीटनाशक दवाओं, पम्पसेट, थ्रेसर, ट्रेक्टर और अन्य मशीनों का इस्तेमाल भारतीय कृषि में बड़ा है। वे यह भी मानते हैं कि देश के कुछ हिस्सों में पूंजीवादी खेती हो रही है। लेकिन वे इसके वाद कहते हैं कि मूलतः सामंती सम्बन्ध बरकरार है।

इनके तर्को की हालत, उस कहानी जैसी है जिसमें राजा ने अपने दरबारियों से कह रखा था कि उसके हाथी के मरने की, जो सूचना उसे देगा, उसको फांसी दे दी जायेगी। एक दिन, हाथी सचमुच बीमार होकर, मर गया। एक-एक कर के दरबारी राजा को यह बताते रहे कि हाथी लेटा हुआ है,हाथी के कान हिल नहीं रहे हैं, वह अपनी पूंछ नहीं हिला रहा है, उसकी आँखें बन्द हैं, वह अपना सूड़ भी नहीं उठा रहा है, उसकी सांस नही चल रही है लेकिन इतना कहने के बाद सभी दरबारी डर के मारे यही कहते थे कि हाथी मरा नहीं है। हमारे देश में नव-जनवादी क्रांति की मंजिल सूत्रित करने वाले संगठनों का भी यही हाल है। वे कहेंगे कि स्थानीय बाजारों का स्थान राष्ट्रीय बाजार ने ले लिया है, यह सही है। पूंजीवादी खेती बढ़ रही है, यह भी सही है। गैर-आर्थिक दबाव कम हुआ है, यह भी ठीक है। श्रम-शक्ति भी माल बन चुकी है, और वे राज्य से जो मांगें रखेंगे, वे

भी पूंजीवादी दायरे की रियायतों की मांग होगी, इत्यादि। एक-एक बात तो वे मान लेंगे, इसके बाद भी कहेंगे कि सामंतवाद मूलतः बरकरार है।

यही हाल, उनके छोटे माल-उत्पादक को खींचकर सामंती उत्पादन प्रणाली में फिट करने में है। जबकि इतिहास के अलग-अलग काल में छोटे माल-उत्पादक मौजूद रहे है और जैसा की ऊपर बताया जा चुका है कि छोटे माल-उत्पादक उस काल की उत्पादन प्रणाली को निर्धारित नहीं करते थे। हालांकि प्राक्-पूंजीवादी समाजों में, ये अपनी चारित्रिक विशिष्टता के साथ मौजूद थे।

इसलिए साधारण माल-उत्पादक की आज के समाज में मौजूदगी सामंती व अर्द्ध-सामंती सम्बन्धों की वजह से नहीं है। बल्कि ये पूंजीवाद को विरासत में मिले पुरानी छोटी अर्थव्यवस्था की उपज है। वर्तमान में ये पूंजीवाद से तबाह और बर्बाद हो रहे हैं। इनकी मुक्ति पूंजीवाद के खात्में से होगी। नव-जनवादी क्रान्ति उनको मुक्त नहीं कर सकती।

अगर यह मान भी लिया जाय कि नव-जनवादी क्रांति की मंजिल है तो साधारण माल-उत्पादक किसान को नव-जनवादी क्रांति तबाही और बर्बादी से किस तरह बचायेगी ? जब कि खुद नव-जनवादी क्रांति की मंजिल बताने वालों की तात्कालिक मांगों के तर्क के अनुसार वे पूंजीवादी शोषण के शिकार हो रहे हैं। यही बात सही भी है।

यदि छोटा मालिक किसान तबाह और बर्बाद हो रहा है तथा उसकी तबाही और बर्बादी का कारण पूंजीवादी शोषण है न कि सामंती उत्पीड़न और शोषण, तो ''जमीन जोतने वाले की हो'' नारे के अनुसार भूमि कार्यक्रम पेश कर के उसकी तबाही और बर्बादी नहीं रोकी जा सकती। उसकी तबाही और बर्बादी के रोकने का जो रास्ता बनता है, वह सहकारी और सामूहिक खेती का ही है। सहकारीकरण और सामूहिकीकरण ही उसको पूंजीवादी शोषण से उत्पन्न तबाही और बर्बादी से बचा सकता है। यह पूंजीवाद को उखाड़ फेंकने के बगैर नहीं हो सकती।

□ □ □